2 जनवरी 2010, कुल पृष्ठ : 8, मूल्य : 2/- आर. एन. आई. 31109/77 RJ / J. P. C / FN-61 / 2009-11

जैन
पथप्रदर्शक
ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
नैतिक एवं सामाजिक चेतना का अग्रदूत निष्पक्ष पाक्षिक

अनुकूल संयोगों में प्रसन्न और प्रतिकूल संयोगों में अप्रसन्न होना हमारा स्वभाव नहीं है, यदि कमजोरी के कारण कदाचित् ऐसा होता भी है तो वह हमारी भूल होगी।
- गागर में सागर, पृष्ठ-55

वर्ष : 32, अंक : 19 सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** आजीवन शुल्क : 251 रुपये
जनवरी (प्रथम), 2010 प्रबन्ध सम्पादक : **पण्डित संजीवकुमार गोधा** वार्षिक शुल्क : 25 रुपये

सिद्धचक्र महामंडल विधान संपन्न

खनियाधाना-शिवपुरी (म.प्र.) : यहाँ दिनांक 19 से 28 दिसम्बर तक चेतनबाग स्थित नंदीश्वर दि. जैन मंदिर में श्री सिद्धचक्र महामंडल विधान का आयोजन किया गया। इस विधान के आयोजक श्री संतोषकुमारजी वैद खनियाधाना थे। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रात: पूजन विधान का आयोजन किया गया, दोपहर में विभिन्न विद्वानों के प्रवचनों का लाभ मिला तथा सायंकाल समयसार एवं छहढाला की कक्षाओं का आयोजन किया गया। रात्रि में संजयजी शास्त्री मंगलायतन द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर ब्र. सुमतप्रकाशजी खनियाधाना, अमितजी, महेन्द्रजी शास्त्री, सचिनजी, मंगलायतन से पधारे श्री संजयजी शास्त्री, संजयजी धवल, दीपकजी धवल, अनिलजी धवल भोपाल आदि के प्रवचनों एवं कक्षाओं का लाभ मिला। विधि विधान के समस्त कार्य मङ्गलायतन से पधारे विधानाचार्य श्री संजयजी शास्त्री ने श्री सुनीलजी धवल, दीपकजी धवल भोपाल आदि के सहयोग से संपन्न कराये। कार्यक्रम में लगभग 550 लोगों की उपस्थिति रही।

ग्वालियर (म.प्र.) : यहाँ दिनांक 8 नवम्बर को बाहुबली तीर्थधाम स्थित सत्यनारायण पहाड़ गेंडेवाली सड़क, लश्कर पर प्रथम बार मानस्तम्भ वेदी प्रतिष्ठा संपन्न हुयी।

दिनांक 6 नवम्बर को जुलुस निकलने के पश्चात् यागमंडल विधान का आयोजन हुआ। दिनांक 7 नवम्बर को घटयात्रा जुलुस जैसवाल धर्मशाला से चलकर जिनालय पहुँचा एवं वहाँ बाहुबली विधान संपन्न हुआ।

दिनांक 8 नवम्बर को प्रात: 10 बजे मानस्तम्भ वेदी में भगवान आदिनाथ की प्रतिमायें अत्यंत हर्षोल्लासपूर्वक विराजमान की गईं। रात्रि में प्रतिष्ठाचार्य पण्डित संजयकुमारजी शास्त्री, पण्डित पूरनचंदजी सोनागिर, मानस्तम्भ निर्माता श्री शीतलचंदजी बड़जात्या दानाओली लश्कर एवं अन्य कार्यकर्ताओं को सम्मानित किया गया।

गुणवंत शिक्षक सम्मान

श्री टोडरमल दि.जैन सिद्धांत महाविद्यालय के स्नातक प्रशांत उकलकर शास्त्री को विश्वशांति ज्ञानपीठ माध्यमिक विद्यालय राहाटी- परभणी (महा.) के सैकण्डरी बोर्ड परीक्षा में संस्कृत विषय में सर्वोत्कृष्ट परीक्षा परिणाम के लिये विद्यापीठ के अध्यक्ष श्री यज्ञकुमार करेवार द्वारा गुणवंत शिक्षक सम्मान से सम्मानित किया गया। ज्ञातव्य है कि कक्षा में 20 छात्रों को 90 प्रतिशत से अधिक अंक प्राप्त हुये हैं।

साप्ताहिक गोष्ठी संपन्न

जयपुर (राज.) : श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धांत महाविद्यालय द्वारा आयोजित साप्ताहिक गोष्ठियों की श्रृंखला में दिनांक 6 दिसम्बर को **समयसार का कर्त्ताकर्म अधिकार : एक अनुशीलन** विषय पर शास्त्री वर्ग के विद्यार्थियों हेतु एक गोष्ठी का आयोजन किया गया।

गोष्ठी की अध्यक्षता अन्तरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त तत्त्ववेत्ता **डॉ. हुकमचंद भारिल्ल** ने की। आपने अपने मार्मिक उद्बोधन में छात्रों के वक्तव्य को सराहते हुये समयसार के मर्म को सरल-सुबोध शैली में विद्यार्थियों को समझाया।

श्रेष्ठ वक्ता के रूप में राहुल जैन नौगांव शास्त्री द्वितीय वर्ष एवं संयम शेटे शास्त्री अन्तिम वर्ष रहे। आभार प्रदर्शन महाविद्यालय के उपप्राचार्य पण्डित शांतिकुमारजी पाटील ने किया। गोष्ठी का संचालन अक्षय वाडकर ने किया।

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल की हीरक जयंती के संदर्भ में प्राप्त पत्र -

1. अशोकनगर से श्री लालारामजी साहू लिखते हैं -

''आशा है आप सपरिवार स्वस्थ-सानंद विराजते होंगे। प्रभावना में आपने आयु के 75 वर्ष पूरे किये, एक क्षण भी संसार-वृद्धि के लिये उपादेय बुद्धि से नहीं गुजारा। आपने गुरुदेवश्री की अध्यात्म देशना को अपने जीवन और कलम से अनवरत प्रचारित-प्रसारित करके अपूर्व कार्य किया है, जो विश्व स्तर पर अभिनन्दनीय है।

हीरक जयन्ती के मांगलिक प्रसंग पर मेरी हार्दिक शुभकामनायें आपको समर्पित। आप इसीप्रकार जैन शासन की अन्तरंग-बहिरंग प्रभावना करते हुये 100 बसंत स्वस्थ-सानंद रहकर पूरे करें। धन्यवाद।

पूर्ववत् कृपा-स्नेह बनाये रखिये।''

2. कन्नौद-देवास (म.प्र.) से श्री सुन्दरलालजी जैन लिखते हैं -

''आपकी हीरक जयंती मनाई गई, यह अक्टूबर 2009 के वीतराग-विज्ञान पत्रिका में पढा और सीन देखे। प्रोग्राम देखे बड़ा हर्ष हुआ।

मैं भी आपके प्रति ऐसी शुभ कामना करता हूँ कि आप हमारे बीच युगों-युगों तक रहें और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के ग्रन्थों का ऐसा ही अनुशीलन कर वीतरागता का माल परोसते रहें और हम पढकर चिन्तन कर सम्यक्त्व की प्राप्ति कर आपके साथ ही मोक्ष महल में स्थिर हो अनन्त-अनन्त सुख भोगते रहें।

मैं ऐसे शुभ भाव आपके प्रति करता हूँ।''

सम्पादकीय – 43

चलते–फिरते सिद्धों से गुरु

(गतांक से आगे ...) – पण्डित रतनचन्द भारिल्ल

खादी की धवल धोती, कुर्ता और टोपी पहने दुबले–पतले विद्वान पण्डित विद्याभूषण शास्त्री का अन्तर्बाह्य व्यक्तित्व आकर्षक था। आचार्यश्री ने उस सरस्वती के पुत्र, आध्यात्मिक प्रवक्ता, सरल स्वभावी पण्डित विद्याभूषणजी शास्त्री से भी चातुर्मास स्थापना समारोह की सभा को संबोधित करने के लिए कहा।

आचार्यश्री का आदेश पाकर पण्डितजी ने स्वयं को धन्य माना और आदेश पालन हेतु सभा को सम्मानपूर्वक सम्बोधित करते हुए कहा – ''धन्य है ऐसी मुनिदशा ! जिन्हें मुक्त होना है, उन्हें ऐसा मुनिव्रत अंगीकार करना ही होगा; क्योंकि मुनि हुए बिना मुक्ति नहीं होती।

मैं स्वयं निरन्तर ऐसी भावना भाता हूँ कि –

''कब धन्य सुअवसर पाऊँ जब निज में ही रम जाऊँ।''

तथा –

''धरकर दिगम्बर भेष कब अठबीस गुण पालन करूँ।''

मैं आचार्यश्री के आदेश का पालन कर आगम की साक्षीपूर्वक मुनि के स्वरूप का उद्घाटन करते हुए मुनिधर्म की महिमा में जो कुछ कह सकूँ, उसे ध्यान से सुनें और हृदयंगम करें तथा अपने जीवन में ऐसा मुनिव्रत धारण करने की भावना भायें।

''धर्मी श्रावक मुनिराज की अद्भुत दशा को पहचानते हैं; क्योंकि उन्होंने स्वयं भी मुनियों जैसी वीतरागी शान्ति का आंशिक स्वाद चखा है। मुनियों की शान्ति की तो बात ही क्या कहें ? उन्हें तो मात्र संज्वलन कषाय शेष रह गई है। अब तो वे केवलज्ञान के बिल्कुल समीप ही पहुँच गये हैं; संसार के कोलाहल से दूर चैतन्य की शान्ति में ठहरकर बर्फ जैसे शीतल हो गये हैं।

आत्मा के आनन्द में झूलते हुए सन्तों ने स्वानुभव में गोते लगाते लगाते यह बात लिखी है। इस पंचम काल में कुन्दकुन्द जैसे मुनि हुए। पंच परमेष्ठी में जिनका स्थान है, वे कुन्दकुन्द आदि मुनिराज जब इस भरतक्षेत्र में विचरते होंगे, उस समय तो ऐसे लगते होंगे, मानो **चलते–फिरते सिद्ध** ही हैं।

भगवतीआराधना के कवच अधिकार में मुनिराज के समाधिमरण की दशा का अद्भुत वर्णन है। किसी सन्त को समाधि के समय कदाचित् सहज प्रमाद से आहार की अथवा जल की वृत्ति उत्पन्न हो तो निर्यापकाचार्य कहते हैं कि 'अनन्त बार भोजन–पानी ग्रहण किया है, अब तो उसकी वृत्ति का परित्याग करके अन्तर के आनन्द के अनुभव में उतरो ! चैतन्य की आराधना करो, अन्दर में डुबकी लगाकर चैतन्य को आराधो, ऐसा समाधिमरण करो कि जिससे फिर से अवतार न हो।'

तब समाधिस्थ मुनिराज भी आहार आदि की वृत्ति का विकल्प त्यागकर स्वरूप में लीन हो जाते हैं। मुनि की ऐसी आराधना अन्तर स्वभाव के आश्रित होती है।

मुनिराज को प्रत्याख्यानावरणीय कषाय का भी अभाव हो चुका है, इस कारण वे सहजरूप से दिगम्बर होते हैं; वे अन्तरधाम की तैयारी करते हैं। उनको देह, मोर पिच्छी और कमण्डलु मात्र परिग्रह होता है।

ऊपर आकाश और नीचे धरती उनके उड़ौना–बिछौना होते हैं। उनके रोम–रोम से वैराग्य रस झरता है। उन्हें स्वरूप में विशेष लीनता वर्तती है। उनके विषय–कषाय की आसक्ति छूट गयी है। दुःश्रुति का श्रवण छूट गया है; दिव्यध्वनि के अनुसार रचित शास्त्रों के श्रवण का विकल्प उत्पन्न होता है। अशुभ से तो संपूर्ण निवृत्ति हो ही गयी है।

सर्वज्ञ के कहे हुए मार्ग में ही मुनियों का उपयोग वर्तता है। वीतरागी सन्त–मुनिवरों को वीतरागता बढ़ गयी है, इसलिए अशुभपरिणाम छूट गये हैं। मात्र पंच महाव्रतादि के शुभ विकल्प होते हैं।

समस्त जैन समाज के व्यक्ति प्रतिदिन प्रातःकाल उठते ही 'णमो लोए सव्वसाहूणं' कहकर सर्व नग्न दिगम्बर रत्नत्रयधारी मुनिवरों को नमस्कार करते हैं।

'जिन्हें अन्दर में आत्मा का भान हो और जो चारित्रदशा में आत्मा के परमआनन्द के घूँट पीते हों तथा अत्यन्त दिगम्बर दशा हो, ऐसे मुनि तो परमपूज्य हैं। उन्हें कौन ज्ञानी गुरु नहीं मानेगा ? सच्चे–देव–शास्त्र–गुरु की श्रद्धा बिना तो व्यवहार सम्यग्दर्शन ही नहीं होता। अतः इसमें गड़बड़ नहीं चल सकती। जिसे भवदुःख से छूटना हो और आत्मा का मोक्षसुख अनुभवना हो, उसको सच्चे देव–शास्त्र–गुरु की यथार्थ श्रद्धा अनिवार्य है।

वीतरागी साधु तो अन्तरस्वभाव के अनुभव द्वारा ज्ञान के प्रकाशक हैं। उन्हें सम्यग्ज्ञान का प्रकाश झलक रहा है, वे सहज सुख के सागर हैं और वीतरागरस से भरपूर हैं। मुनि तो सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र गुणोंरूपी रत्नों से भरपूर रत्नाकर हैं; सुगुणों के समुद्र हैं। धर्मीजीव उन्हें पहचानकर नमस्कार करते ही हैं।

'मुनिराज, वीतराग धर्म के भूषणस्वरूप हैं, पाप का खण्डन करनेवाले हैं। यथार्थ धर्म का उपदेश देते हैं, इसलिए धर्म को शोभित करनेवाले हैं और मिथ्यात्व का नाश करनेवाले हैं। परमशान्तभाव द्वारा ही कर्मों का नाश करते हैं। ऐसे मुनिवर जो पृथ्वीलोक में विराजमान हैं, उन्हें पहचानकर पण्डित बनारसीदासजी ने भक्तिपूर्वक नमस्कार किया है, वे कहते हैं – 'अहो ! जगत् के शिरोमणि मुनि–भगवन्तों से तो जगत् सुशोभित है, वे वन्दनीय हैं। मुनिराज तो सर्वज्ञ के बड़े पुत्रवत् उनके उत्तराधिकारी हैं।'

अपने अनुभव की साक्षीसहित मुनिराज कहते हैं कि ''मैं ऐसे आनन्द का अनुभव करता हूँ और तुमको भी ऐसे आनन्द का अनुभव करने के

लिए आमंत्रित करता हूँ। इसलिए तुम उस अनुभव को प्रगट करके अपनी चैतन्य सम्पदा को प्राप्त करो।

अरे भाई ! सुख की सम्पदा चेतन में होगी या जड़ में ? चेतन आत्मा स्वयं ही सुख-सम्पदा से परिपूर्ण है, चैतन्य-सम्पदा में कोई विपदा नहीं है। मान-अपमान के विकल्प अथवा निन्दा-प्रशंसा के शब्द उसमें प्रवेश नहीं कर सकते। चैतन्यतत्त्व ऐसा नहीं है कि जो मान मिलने से फूल जाए और अपमान होने पर कुम्हला जाए। तेरा चैतन्यतत्त्व तो सदा आनन्दमय है, जो मुनिराज ऐसे आनन्दमय अनुभव करने को कहते। धन्य हैं वे मुनिराज ! उनको हमारा सौ-सौ बार नमन है।'

वीतरागी सन्तों के नाद से आत्मा डोल उठता है और स्वभाव के पन्थ में चढ़ जाता है। जिसे आत्मा को साधने की छटपटाहट है, सन्त उस आत्मा का उल्लास उत्पन्न करते हैं। 'अरे जीव तू जाग रे जाग ! तेरे चैतन्य में अपूर्व सामर्थ्य है, उसे तू सम्हाल !' सन्तों का ऐसा नाद सुनते ही श्रावकों का आत्मा उल्लास से जाग जाता है और उपयोग को अन्तरोन्मुख करके वह आत्मा का अनुभव कर लेता है।

मुनिवर तो आत्मा के परम आनन्द में झूलते-झूलते मोक्ष को साध रहे हैं। आत्मा के अनुभवपूर्वक दिगम्बर चारित्रदशा द्वारा ही मोक्ष सधता है, दिगम्बर साधु साक्षात् मोक्ष का मार्ग हैं। अन्तर के चिदानन्द स्वरूप में झूलते-झूलते बारम्बार शुद्धोपयोग द्वारा निर्विकल्प आनन्द का अनुभव करते हैं। पंच परमेष्ठियों में जिनका स्थान है, ऐसे मुनियों की महिमा की क्या बात कहें। ऐसे मुनि का दर्शन प्राप्त होना भी महान आनन्द की बात है। ऐसे मुनिवरों के तो हम दासानुदास हैं। हम उनके चरणों में नमते हैं। धन्य है वह मुनिधर्म!

मुनियों के आत्मा की अन्तर्दशा अलौकिक होती है, वह भी पहचानी जा सकती है और ऐसी पहचान करके आचार्य अमृतचन्द्र उसका वर्णन करते हैं - 'देखो तो सही! उन्हें कितना बहुमान है ? जो स्वयं भी मुनि हैं, वे अन्य मुनिराज को पहचान कर कहते हैं कि अहो! 'कुन्दकुन्दस्वामी तो संसार के किनारे पहुँच गये हैं और मोक्ष में पहुँचने की तैयारी में हैं, उन्हें सातिशय विवेक ज्योति प्रगट हुई है, अनेकान्तरूप वीतरागी विद्या में वे पारंगत हैं, समस्त पक्ष का परिग्रह छोड़कर मध्यस्थ हैं, स्वयं ने पंच परमेष्ठी के पद में बैठकर मोक्षलक्ष्मी को ही उपादेय किया है। बीच में शुभराग आ पड़े, उसे कषायकण समझकर हेय किया है। इसप्रकार वे मोक्षमार्गरूप परिणत हुए हैं।'

जगत् में सहज चैतन्यतत्त्व को भानेवाले, अनुभव करनेवाले सन्त-धर्मात्मा श्रेष्ठ हैं। उन्हें जगत् की स्पृहा नहीं है, इन्द्र और चक्रवर्ती की विभूति भी जिन्हें नगण्य है। सहज चैतन्यतत्त्व से उत्कृष्ट वैभव जगत् में दूसरा नहीं है - ऐसे चैतन्य तत्त्व की भावनावाले सन्तों को हम प्रणाम करते हैं।

जैसे पिता परदेश जाकर आवें, तब बालकों के लिए उपहार लाते हैं; उसीप्रकार अपने धर्मपिता कुन्दकुन्दाचार्य विदेहक्षेत्र जाकर भरतक्षेत्र के बालकों के लिए शुद्धात्मा के आनन्द का उपहार समयसार लाये हैं और कहते हैं - 'तू इस समयसार द्वारा अपने शुद्धात्मारूप समयसार का स्वानुभवगम्य कर !'

देखो! मुनिराज तो सीधे सिद्धों से बातें करते हैं और कहते हैं - 'प्रभु! तेरे जैसा मेरा स्वभाव मैंने अपने में अनुभव कर लिया है; इसलिए मैं तेरे समीप ही हूँ, तुझसे जरा भी दूर नहीं हूँ।'

चारित्रवन्त मुनियों के चित्त में निज परम आत्मतत्त्व ही बसता है, परमतत्त्व के अतिरिक्त कोई रागादि परभाव उनके चित्त में नहीं बसते। जिनकी ज्ञानपर्याय में कारण परमात्मा बसते हैं, उन्हें मैं बारम्बार नमता हूँ।

मुनिराज को ज्यों-ज्यों आत्मध्यान की शक्ति बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों व्यवहार छूटता जाता है। मुनिराज को इतनी शुद्धि तो प्रगट ही है कि अन्तर्मुहूर्त से अधिक उपयोग बाहर रहता ही नहीं। विकल्प आते हैं; परन्तु उनमें तन्मयता नहीं होती। पुरुषार्थ की कमजोरी से व्यवहार में आना पड़ता है, लेकिन भावना तो बारम्बार शुद्धस्वरूप में स्थिर होने की ही रहती है। विकल्प के प्रति खेद वर्तता है।

प्रतिकूल संयोगों में मुनि को देखकर जो जीव मुनि को दुःखी मानते हैं, उन्हें चारित्रदशा में होनेवाले सुख की खबर नहीं है। मुनि के शरीर को सिंह फाड़कर खा रहा हो, उसे देखकर अज्ञानी उन्हें दुःखी मानते हैं, जबकि मुनि तो परम शान्ति में हैं। वे आत्मा के आनन्द में झूलते हैं, उन्हें दर्द तो होता होगा, पर उपयोग बाहर आने पर भी उन्हें दुःख नहीं है; क्योंकि मुनिराज संयोग से दुःख नहीं मानते।

ज्ञानी श्रावक को भी राग आता है और वह मुनि का उपसर्ग दूर करने का प्रयत्न करता है। मुनि को बचाने के प्रयोजन में सिंह को तलवार लग जाए, तब भी वहाँ सिंह को मारने का अभिप्राय नहीं होने से तथा मुनि को बचाने के प्रसंग में ऐसा भी हो सकता है कि बचानेवाला और मारनेवाला दोनों ही मर जावें; परन्तु बचाने के भाव वाला स्वर्ग में जाता है और मारने के भाव वाला नरक में जाता है।

देव-गुरु के स्वरूप के सम्बन्ध में सत्य-असत्य का विवेक करने में भय रखे तो सत्य समझ में नहीं आ सकता। श्री कुन्दकुन्द आचार्य पंच महाव्रतधारी भावलिंगी सन्त थे। उनके द्वारा कहे हुए वचन सर्वज्ञ-वीतराग के समान ही प्रमाणभूत है।

हमारे परम सौभाग्य से ही हमें ऐसे परम वीतरागी संतों का समागम प्राप्त हुआ है। अतः हम सभी को अधिक से अधिक संख्या में पधारकर मुनि संघ के सान्निध्य का लाभ लेना चाहिये। इतना कहकर मैं विराम लेता हूँ।''

इसप्रकार मुनिधर्म एवं मुनिराजों की महिमा से अभिभूत पण्डितजी का भावभीना उद्‌बोधन सुनकर मुनिसंघ को ऐसा लगा कि -

'क्या यह वही विद्याभूषण शास्त्री हैं, जिसके बारे में अबतक यह सुनते रहे कि पता नहीं क्यों? विद्याभूषण शास्त्री मुनियों का एवं पूजा–पाठ और भक्ति आदि का कट्टर आलोचक हो गया है, बात–बात में बाल की खाल खींचता है; परन्तु इसमें ऐसा तो कुछ भी नहीं है। जैसी भक्तिभाव से पूजा–भक्ति करते इसे देखा, ऐसी भक्ति भावना तो बहुत कम लोगों में देखने में आती है।

मुनिधर्म की महिमा तो इसके मुख से अपने कानों से अभी–अभी सुनी ही है। इस पण्डित की धार्मिक चर्या व चर्चा तथा बाह्याचार भी किसी भी श्रेष्ठ श्रावक से कम नहीं है – साधु–संतों के बहुमान में भी कोई कमी दिखाई नहीं देती।'

* * *

चातुर्मास स्थापना समारोह में मुनिसंघ के सिवाय और भी अनेक ऐसे नवीन श्रोता थे, जो मात्र यह जानने के लिए ही आये थे कि – 'आजकल विद्याभूषण शास्त्री का मुनियों के प्रति क्या रुख है ? कैसा व्यवहार होता है और वे मुनियों के विषय में क्या बोलते हैं; क्योंकि सम्पूर्ण दिगम्बर जैन समाज में यह अफवाह थी कि – 'मात्र आत्मा–आत्मा के गीत गाने वाला यह समयसारी पण्डित पूजा–भक्ति, संयम–साधना, तप–त्याग तथा मुनियों का विरोधी हो गया है।' परन्तु पण्डितजी का उद्बोधन सुनकर और साधर्मियों के प्रति धर्म वात्सल्य देखकर उनका सब भ्रम भंग हो गया और वे पण्डितजी के पक्षधर बन गये।

समारोह सभा के अन्तिम क्षणों में आचार्यश्री ने पण्डितजी को धर्मवृद्धि का आशीर्वाद देते हुए पुनः कहा – 'यथा नाम तथा गुण सम्पन्न पण्डितजी' के बारे में मुझे परोक्ष रूप से कुछ ऐसे समाचार मिले थे कि 'पण्डितजी एकांती हो गये हैं, परन्तु आज जब पण्डितजी से साक्षात्कार हुआ तो मेरा सारा भ्रम भंग हो गया। मैंने जब इन्हें प्रत्यक्ष देखा/सुना तो पाया कि पण्डितजी तो अध्यात्मज्ञान के ऐसे रत्नाकर है, जिसमें तत्त्वज्ञान के रत्नों का भंडार तो भरा ही है, साथ ही अन्य अनुयोगों का ज्ञान भी अच्छा है। आचार्य कुन्दकुन्द के पंचपरमागम तो आपके रोम–रोम में ही समा गये हैं, जहाँ तक संयम का सवाल है सो वह भी भूमिकानुसार बहुत अच्छा है। मैंने इनके उद्बोधन को ध्यान से सुना, इनके कथन से सिद्ध होता है कि उनपर मुनि विरोधी होने का आरोप भी निराधार है।

कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य समन्तभद्र स्वामी के रत्नकरण्ड श्रावकाचार के अनुसार व्यवहार सम्यग्दर्शन में भी सच्चे देव–शास्त्र–गुरु की श्रद्धा का होना अनिवार्य है और सच्चे देव–शास्त्र–गुरु के निर्णय का आधार जिनवाणी है। अतः जिनागम की कसौटी पर जो देव–शास्त्र–गुरु खरे उतरेंगे, उन्हें ही तो सच्चे देव–शास्त्र–गुरु का भक्त माना जायेगा।

जब उन्हीं समन्तभद्र स्वामी ने देवागम स्तोत्र में सच्चे देव को आगम की कसौटी पर कस डाला तब किसी भक्त को एतराज क्यों नहीं हुआ?

सम्यग्दर्शन का अभिलाषी यदि गुरु को आगम की कसौटी पर कसकर गुरु मानता है तो वह क्या अपराध करता है?

पण्डितजी को ही क्या आप सबको भी परीक्षाप्रधानी तो होना ही चाहिए, अन्यथा आपका भी यह दुर्लभ मानव जीवन अंध श्रद्धा में यों ही बीत जायेगा।''

आचार्यश्री ने पण्डितजी को बधाई देते हुए आगे कहा – ''मैं पण्डितजी के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ और उन्हें उनके भय, आशा, स्नेह से दूर रहकर वस्तु स्वरूप के निर्णय करने का साहस जुटाने हेतु बधाई देता हूँ। मैं आप सब से भी ऐसी अपेक्षा रखता हूँ कि आप सब भी पण्डितजी की भाँति ही निर्भय होकर सत्य को समझें और इनसे तत्त्वज्ञान का पूरा लाभ लें।''

आचार्यश्री का अन्तिम उद्बोधन समाप्त ही हुआ था कि एक श्रोता हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। उसने कहा – ''आचार्यश्री! आपने जो कहा – हम उसकी अनुमोदना करते हैं; परन्तु हमारा एक प्रश्न यह है कि ''ये पण्डितजी पुण्य कार्य करते हैं, फिर भी पुण्य को हेय क्यों कहते हैं? क्या यह दुहरा व्यक्तित्व नहीं है?''

आचार्यश्री ने दृढ़ता से कहा – ''नहीं भाई, ऐसा नहीं है। यदि तुम मेरे सामने भी शास्त्र प्रवचन में समयसार रखोगे तो मुझे भी पुण्य–पाप को हेय ही बताना होगा; क्योंकि पुण्य–पाप–आस्रवतत्त्व हैं और आस्रव संसार का कारण है, 'दुःखद' है। इसकारण उसे आगम में भी हेय ही कहा है। हाँ, जब तक आत्मा में स्थिरता नहीं आ पाती, पूर्ण वीतरागता प्रगट नहीं हो जाती, तबतक पापभाव से बचने के लिए साधक को पुण्य कार्य या शुभभाव हुए बिना नहीं रहते। एतदर्थ ज्ञानी को भी भूमिकानुसार पुण्य कार्य करना अनिवार्य हो जाता है। इसकारण पुण्य हेय होते हुए भी पुण्य कार्य किये ही जाते हैं।

हमारे पूर्वज आचार्य भी हमें मुख्यतः तो आत्महित की ही प्रेरणा देते हैं, साथ ही यह भी कहते हैं कि यदि संभव हो तो परहित भी करना चाहिए; परन्तु परहित की तुलना में आत्महित ही सर्वश्रेष्ठ है। उक्तं च –

'आदहिदं कादव्वं, जइ सक्कं परहिदं च कादव्वं।
आदहिद परहिदादो, आदहिदं सुट्ठु कादव्वं।।

अर्थात् आत्महित व परहित में आत्महित ही सर्वश्रेष्ठ है।'

–अनागार धर्मामृत

अन्त में आचार्यश्री ने कहा – ''पण्डितजी के प्रति हुए अपने पूर्वाग्रह को छोड़कर सभी समाज को पण्डितजी के ज्ञान का लाभ लेना ही चाहिए। तथा पण्डितजी भी समाज पर धर्म स्नेह रखते हुए भी यथाशक्ति नियमित स्वाध्याय चालू रखें, जिससे जीवों का कल्याण हो।''

इसीप्रकार आचार्यश्री की प्रेरणा के साथ अन्त में हर्षपूर्वक जिनवाणी की स्तुति एवं मुनिसंघ की जयध्वनि के साथ चातुर्मास स्थापना समारोह सभा विसर्जित हुई और सब अपने–अपने घर प्रस्थान कर गये।●

मोक्षमार्ग प्रकाशक का सार 43

दसवाँ प्रवचन

– डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

(गतांक से आगे...)

मैं ये नहीं कहना चाहता कि आप शुद्ध-सात्त्विक पोशाक (ड्रेस) न पहन कर ऐसे कपड़े पहिनें कि दूर से देखने पर कार्टून जैसे लगें। अन्तर की सात्त्विक वृत्ति के अनुसार बाहर का वेश भी सात्त्विक होना चाहिए; क्योंकि शालीन व्यक्ति का वेश भी शालीन ही होता है। **पर मूल बात तो यह है कि अन्तर की पवित्रता के बिना ही कुछ ऐसा वेश बनाना कि जगत को लगे कि आप उनसे कुछ हटकर हैं; क्योंकि इसके बिना लोगों की श्रद्धा को लूटना संभव नहीं है। इसप्रकार के प्रयत्नों को किसी भी रूप में उचित नहीं माना जा सकता; पर हमारे मानने न मानने से क्या होता है ? हो तो ऐसा ही रहा है और आगे भी ऐसा ही होता रहेगा। सहज ज्ञाता-दृष्टा रहने के अतिरिक्त हम और कर भी क्या सकते हैं ?**

कुछ लोग पट्ट द्वारा गुरुपना मानते हैं। कहते हैं कि हम अमुक गुरु के पट्टाधीश हैं। ऐसे पट्टाधीशों की चर्चा करते हुए पण्डितजी लिखते हैं –

''तथा कितने ही पट्ट द्वारा गुरुपना मानते हैं। पूर्वकाल में कोई महन्त पुरुष हुआ हो, उसकी गादी पर जो शिष्य-प्रतिशिष्य होते आये हों, उनमें उस महत्पुरुष जैसे गुण न होने पर गुरुपना मानते हैं।

यदि ऐसा ही हो तो उस गादी में कोई परस्त्रीगमनादि महापाप कार्य करेगा, वह भी धर्मात्मा होगा, सुगति को प्राप्त होगा; परन्तु यह सम्भव नहीं है और वह पापी है तो गादी का अधिकार कहाँ रहा ?

जो गुरुपद योग्य कार्य करे, वही गुरु है।[१]''

पट्ट माने गादी, गद्दी। जिसप्रकार जैनेतरों में शंकराचार्य की गद्दी चलती है; उसीप्रकार उस समय दिगम्बर जैनों में भी भट्टारकों की गद्दियाँ चलने लगी थीं। जिसप्रकार शंकराचार्य की गद्दी पर बैठनेवाले का नाम भी शंकराचार्य ही रहता है; उसीप्रकार दिगम्बर जैनों में भी रहता था।

यह बात तो हम सब जानते ही हैं कि जो विद्वता, जो प्रभाव और अन्य भी अनेक विशेषतायें मूल शंकराचार्य में रही होंगी; उनकी गद्दी पर बैठनेवालों में यह बात शायद ही रही हो। इसीप्रकार की स्थिति भट्टारक परम्परा में भी रही होगी।

उक्त संदर्भ में पण्डितजी का कहना यह है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने गुणों से महान होता है, किसी की गद्दी पर बैठने से नहीं। गद्दी पर बैठनेवाले गद्दी पर तो बैठ जाते हैं; नाम भी वही रख लेते हैं; पर विद्वता तो स्वयं ही अर्जित करनी होगी, संयम तो स्वयं ही साधना होगा।

आजकल तो इसका निर्णय समाज करने लगा है कि कौन बैठेगा गद्दी पर। इसमें भी राजनीति चलने लगी है और जो इन गद्दियों पर बैठते हैं, उन्हें मठ की व्यवस्थाओं में ही उलझे रहना होता है।

१. मोक्षमार्ग प्रकाशक, पृष्ठ – १७६

वे मठ या तो तीर्थों पर हैं या फिर वे स्थल (मठ) तीर्थ बन गये हैं। अत: वहाँ की व्यवस्थायें भी बहुत बड़ी हो गई हैं; जिनमें उलझे रहना उनकी मजबूरी हो गई है।

उत्तर भारत में यह भट्टारक परम्परा एकप्रकार से लुप्त हो गई है; परन्तु दक्षिण भारत में यह आज भी विद्यमान है।

उत्तर भारत में भी यह परम्परा नये रूप में उभर रही है और नये प्रकार के मठ बनते जा रहे हैं।

मैं कहना चाहता हूँ कि क्या अजितनाथ आदिनाथ की गद्दी पर बैठे थे ? इसीप्रकार क्या संभवनाथ भी अजितनाथ की गद्दी पर बैठे थे ?

जैनदर्शन की साधुता गद्दियों से नहीं चलती; वह तो गादी के त्याग-पूर्वक होती है।

गुरुदेव श्री कानजी स्वामी के समय पर भी यह चर्चा बहुत चलती थी कि कानजी स्वामी के बाद कौन बैठेगा उनकी गादी पर।

हमारा तो एक यही उत्तर रहता था कि स्वामीजी की कोई गद्दी है ही नहीं, उन्होंने गादी बनाई ही नहीं; तो फिर उनकी गादी पर कौन बैठेगा – यह प्रश्न ही कहाँ खड़ा होता है ?

यह बात तो पीछे स्पष्ट कर ही आये हैं कि वे दिगम्बर साधु नहीं थे। न वे स्वयं स्वयं को दिगम्बर साधु मानते थे और न उनके अनुयायी ही उन्हें साधु मानते हैं, वे तो एक सम्यग्दृष्टि सामान्य श्रावक थे।

उन्होंने दिगम्बर जिनधर्म प्राप्त कर अपना कल्याण किया और जगत के सामने भी जिन-अध्यात्म का मर्म प्रस्तुत किया है। आगे भी जिसमें योग्यता होगी, वह भी जिन-अध्यात्म का मर्म समझ कर अपना कल्याण करेगा और अपनी योग्यतानुसार जगत के सामने उसे प्रस्तुत भी करेगा।

अब मुझसे भी लोग पूछने लगे हैं कि आपके बाद कौन बैठेगा आपकी गद्दी पर; पर मेरा एक ही उत्तर होता है कि हमने कोई गादी बनाई ही नहीं। आरंभ से ही जिस गादी पर बैठकर मैं प्रवचन करता हूँ, उसी गादी पर बिठाकर अपने प्रत्येक विद्यार्थी के प्रवचन कराता रहा हूँ।

अरे, भाई ! जैनदर्शन में किसके बाद कौन ? का प्रश्न ही खड़ा नहीं होता; क्योंकि जैनदर्शन में प्रत्येक आत्मा अनादि-अनन्त है; ऐसी स्थिति में उसके पहले और उसके बाद का कोई प्रश्न ही खड़ा नहीं होना चाहिए।

न तो मैंने किसी का काम संभाला है और न किसी को मेरा काम संभालने की आवश्यकता है। स्वामीजी ने अपना काम किया, अपने आत्मकल्याण का काम किया और मैं भी अपना काम ही करता हूँ, अपने कल्याण का कार्य ही करता हूँ। मेरे छात्र भी स्वयं का ही कार्य करेंगे। कोई किसी का कार्य नहीं करता, न कर सकता है; सब अपना-अपना कार्य ही करते हैं। जैनदर्शन में तो परकर्तृत्व के अभिमान को मिथ्यात्व कहा है।

प्रत्येक आत्मा अपनी-अपनी योग्यता और क्षमता के अनुसार अपना-अपना कार्य करते हैं और जिनकी वाणी जिनके आत्मकल्याण में निमित्त बनना होती है, सहजभाव से बन जाती है।

जैनदर्शन की तो अनादि परम्परा ऐसी ही है। इसमें

उत्तराधिकारी के रूप में मठाधीशों के लिए कोई स्थान नहीं है।

आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी इस मोक्षमार्गप्रकाशक में कुगुरु संबंधी प्रकरण के उपसंहार में वर्तमान स्थिति पर खेद प्रकट करते हुए लिखते हैं –

''देखो, हुण्डावसर्पिणी काल में यह कलिकाल वर्त रहा है, इसके दोष से; जिनमत में मुनि का स्वरूप तो ऐसा है, जहाँ बाह्याभ्यन्तर परिग्रह का लगाव नहीं है, केवल अपने आत्मा का आपरूप अनुभवन करते हुए शुभाशुभभावों से उदासीन रहते हैं और अब विषय–कषायासक्त जीव मुनिपद धारण करते हैं; वहाँ सर्व सावद्य के त्यागी होकर पंचमहाव्रतादि अंगीकार करते हैं, श्वेत–रक्तादि वस्त्रों को ग्रहण करते हैं, भोजनादि में लोलुपी होते हैं, अपनी पद्धति बढाने में उद्यमी होते हैं व कितने ही धनादिक भी रखते हैं, हिंसादिक करते हैं व नाना आरम्भ करते हैं; परन्तु अल्प परिग्रह ग्रहण करने का फल निगोद कहा है, तब ऐसे पापों का फल तो अनंत संसार होगा ही होगा।

लोगों की अज्ञानता तो देखो, कोई एक छोटी भी प्रतिज्ञा भंग करे उसे तो पापी कहते हैं और ऐसी बड़ी प्रतिज्ञा भंग करते देखकर भी उन्हें गुरु मानते हैं, उनका मुनिवत् सन्मानादि करते हैं; सो शास्त्र में कृत,कारित, अनुमोदना का फल कहा है; इसलिए उनको भी वैसा ही फल लगता है।

मुनिपद लेने का क्रम तो यह है ह्न पहले तत्त्वज्ञान होता है, पश्चात् उदासीन परिणाम होते हैं, परिषहादि सहने की शक्ति होती है; तब स्वयमेव मुनि होना चाहता है और तब श्रीगुरु मुनिधर्म अंगीकार कराते हैं।

यह कैसी विपरीतता है कि ह्न तत्त्वज्ञानरहित विषय–कषायासक्त जीवों को माया से व लोभ दिखाकर मुनिपद देना, पश्चात् अन्यथा प्रवृत्ति कराना; सो यह बड़ा अन्याय है।[१]''

पण्डित टोडरमलजी के समय में नग्न दिगम्बर मुनिराजों के विद्यमान होने के कोई उल्लेख तो प्राप्त होते नहीं; अत: यही लगता है कि उक्त कथन स्वयं को मुनिराज मानने और कहनेवाले भट्टारकों के संदर्भ में ही होंगे।

जो भी हो.....।

इसके उपरान्त पण्डित टोडरमलजी मोक्षमार्गप्रकाशक में कुछ उद्धरण प्रस्तुत करते हैं; जिनमें कुगुरुओं के नंगे नाच का सजीव चित्रण हैं।

उनमें से श्वेताम्बर ग्रंथ 'संघपट्ट' का एक छन्द इसप्रकार है –

(शार्दूलविक्रीडित)

क्षुत्क्षाम: किल कोपि रंकशिशुक: प्रवृज्य चैत्ये क्वचित्।
कृत्वा किंचनपक्षमक्षतकलि: प्राप्तस्तदाचार्यकम्।।
चित्रं चैत्यगृहे गृहीयति निज गच्छे कुटुम्बीयति।
स्वं शक्रीयति बालिशीयति बुधान् विश्व वराकीयति।।[२]

उक्त छन्द में अत्यन्त स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि भूख से पीड़ित किसी रंक का बालक किसी मठ में दीक्षा धारण करके आचार्य बन बैठा। वह निर्द्वन्द्वभाव से मंदिर में घर और गच्छ में कुटुम्ब के समान प्रवृत्ति करता है, अपने को इन्द्र के समान महान मानता है, ज्ञानियों को बालकवत् और सामान्य गृहस्थों को रंक के समान मानकर व्यवहार करता है। यह बड़े आश्चर्य की बात है।

इसके बाद मोक्षमार्गप्रकाशक में एक छन्द की मात्र एक पंक्ति[१] देकर पूरे छन्द का भाव प्रस्तुत किया गया है। उसका भाव बताते हुए लिखा गया है कि जिनसे जन्म नहीं लिया, जिन्होंने पाल–पोषकर बड़ा नहीं किया, जिन्होंने मोल नहीं लिया, जिनके कर्जदार भी नहीं हैं। तात्पर्य यह है कि जिनसे किसी भी प्रकार का संबंध नहीं है; उन गृहस्थों को ये मठाधीश बैलों के समान जोतते हैं, दानादिक के नाम पर जबरदस्ती चन्दा वसूलते हैं; हाय ! हाय !! यह जगत राजा रहित है, कोई न्याय पूछनेवाला नहीं है।[२]

उक्त छन्दों से यह अनुमान सहज ही किया जा सकता है कि तत्कालीन जैन समाज कुगुरुओं से किसप्रकार त्रस्त रहा होगा।

उक्त संदर्भ में **'पण्डित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व'** का निम्नांकित अंश दृष्टव्य है –

''इसी बात को चन्द्रकवि इसप्रकार लिखते हैं कि जब सांगानेर में नरेन्द्रकीर्ति भट्टारक का चातुर्मास था, तब उनके व्याख्यान के समय अमरचंद गोदीका का पुत्र (जोधराज) जो सिद्धान्तशास्त्रों का ज्ञाता था, बीच–बीच में बहुत बोलता था। उसे व्याख्यान में से जूते मार कर निकाल दिया गया था। इससे चिढ कर अनादि से चली अन्य तेरह बातों का उत्थापन करके उसने तेरहपंथ चलाया।[३]

इसतरह का कठोर व्यवहार भट्टारकों के अनुयायी श्रावक लोग ही नहीं करते थे, किन्तु भट्टारक लोग स्वयं भी उसमें प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्षरूप से सक्रिय रहते थे। वे ऐसा करने के लिए श्रावकों को मात्र उकसाते ही नहीं थे, वरन् स्पष्ट आदेश तक देते थे। उनके द्वारा लिखित टीका ग्रन्थों में भी इसप्रकार के उल्लेख पाए जाते हैं।

सोलहवीं शती के भट्टारक श्रुतसागर सूरि ने कुन्दकुन्दाचार्य के पवित्रतम ग्रन्थ 'षट्पाहुड' (षट्प्राभृत) की टीका करते हुए इसप्रकार की अनर्गल बातें लिखी हैं –

जब ये जिनसूत्र का उल्लंघन करें, तब आस्तिकों को चाहिए कि युक्तियुक्त वचनों से इनका निषेध करें; फिर भी यदि ये कदाग्रह न छोड़े

---

१. मोक्षमार्ग प्रकाशक, पृष्ठ ह्न १७९ वही, पृष्ठ–१८०

१. **यैर्जातो न च वर्द्धितो न च न च क्रीतो**....इत्यादि।
२. मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ १८१
३. संवत् सोलासै पचोत्तरे कार्तिक मास अमावस कारी।
कीर्तिनरेन्द्र भट्टारक सोभित, चातुर्मास सांगावति धारी।
गोदीकारा उधरो अमरोसुत, सास्त्रसिंधत पढाइयो भारी।
बीच ही बीच बखानमैं बोलत, मारि निकार दियौ दुख भारी।।
तदि तेरह बात उथापि धरी, इह आदि अनादि को पंथ निवार्‌यो।
हिन्दू के मारे म्लेच्छ ज्यों रोवत, तैसे त्रयोदस रोय पुकार्‌यो।
पागरख्यां मारि जिनालय से विडारि दिए, तातैं कुभाव धारि न मानैं गुरु जती कों।
झूठो दंभ धरै फिरै झूठ ही विवाद करे, छोड़े नांहि रीस जानहार कुगती कों।।
– अ.क.भूमिका, ५२

तो समर्थ आस्तिक इनके मुँह पर विष्ठा से लिपटे हुए जूते मारें, इसमें जरा भी पाप नहीं है।[१]''

मोक्षमार्गप्रकाशक के कथनों को उक्त स्थिति के संदर्भ में देखा जाना चाहिए।

इसके उपरान्त मोक्षमार्गप्रकाशक में अष्टपाहुड की अनेक गाथाओं में प्रस्तुत की गई हैं, जिनमें से कुछ गाथाओं का हिन्दी पद्यानुवाद इसप्रकार है-

(हरिगीत)

सद्धर्म का है मूल दर्शन जिनवरेन्द्रों ने कहा।
हे कानवालो सुनो! दर्शनहीन वंदन योग्य ना।।२।।
जो ज्ञान-दर्शन-भ्रष्ट हैं चारित्र से भी भ्रष्ट हैं।
वे भ्रष्ट करते अन्य को वे भ्रष्ट से भी भ्रष्ट हैं।।८।।
चाहें नमन दृगवन्त से पर स्वयं दर्शनहीन हों।
है बोधिदुर्लभ उन्हें भी वे भी वचन-कर हीन हों।।१२।।
जो लाज गारव और भयवश पूजते दृगभ्रष्ट को।
की पाप की अनुमोदना ना बोधि उनको प्राप्त हो।।१३।।
जिन लिंग धर कर पाप करते पाप मोहितमति जो।
वे च्युत हुए हैं मुक्तिमग से दुर्गति दुर्मति हो।।७८।।

उक्त छन्दों में अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि जो व्यक्ति स्वयं सम्यग्दर्शन से रहित है; किन्तु क्रियाकाण्ड के आधार पर सम्यग्दृष्टियों से अपने पैर पुजवाना चाहता है; उसे वास्तविक रत्नत्रय की प्राप्ति दुर्लभ है और वह आगे जाकर गूंगा और लूला होगा अर्थात् वाणी और हाथों से रहित होगा। जो बोल नहीं सकता, उसे गूंगा कहते हैं और जिसके हाथ नहीं होते, उसे लूला कहते हैं।

वाणी और हाथों से रहित का अर्थ मात्र इतना ही नहीं है कि वह गूंगा और लूला मुनष्य होगा; अपितु यह है कि एकेन्द्रिय वृक्ष होगा अर्थात् निगोद जायेगा। एकेन्द्रिय जीवों की जबान न होने से वे गूंगे और वृक्षों के हाथ नहीं होते; इसलिए वे लूले हैं। यह तो आप सब जानते ही हैं कि निगोदिया जीव एकेन्द्रिय वनस्पतिकायिक होते हैं। अत: यह सहज ही प्रतिफलित हो जाता है कि ऐसे जीव निगोद जावेंगे; क्योंकि वे बज्र मिथ्यादृष्टि हैं और मिथ्यात्व का फल अंतत: निगोद ही है।

१२वें छन्द में यह कहने के उपरान्त १३वें छन्द में यह कहते हैं कि जो जीव लज्जा, गारव और भय के कारण मिथ्यादृष्टिओं के चरणों में झुकते हैं; उन्हें भी उनकी अनुमोदना के कारण रत्नत्रय की प्राप्ति नहीं होगी।

इसप्रकार हम देखते हैं कि कुगुरु स्वयं तो संसार सागर में डूबते ही हैं; पर साथ में अपने अनुयायियों के भवभ्रमण को भी बढा देते हैं। अत: उनसे दूर रहना ही अच्छा है।

न तो उनकी सेवा में स्वयं को समर्पित करना ठीक है और न उनके विरोध में अपने समय और शक्ति को बर्बाद करना उचित है; क्योंकि ये मनुष्य जन्म पाना इतना आसान नहीं है कि इसे चाहे जहाँ यों ही बर्बाद कर दिया जाय। ●

१. यदि जिनसूत्रमुल्लंघंते तदाऽऽस्तिकैर्युक्तिवचनेन निषेधनीया:। तथापि यदि कदाग्रहं न मुञ्चन्ति तदा समर्थैरास्तिकैरुपानद्भि: गूथलिप्ताभिर्मुरवै: ताडनीया: तत्र पापं नास्ति। ह्व षट्प्राभृत टीका, ३

श्री टोडरमल स्मारक भवन में दिनांक 4 अक्टूबर, 2009 को डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल अभिनन्दन समारोह समिति द्वारा आयोजित हीरक जयन्ती समारोह में श्रीमती मालती जैन (जयपुर दूरदर्शन/रेडियो कलाकार) जयपुर द्वारा पठित स्वरचित कविता -

हे जैनदर्शन के शीर्षस्थ विद्वान !

हे बुन्देलखण्ड के मनीषी !
हे ग्रन्थों के सागर ! हम करते हैं आपका
बारम्बार अभिनन्दन अभिनन्दन अभिनन्दन...
आपको हम सबका शत् शत् वन्दन शत् शत् वन्दन
परम पावन वह मंगल वेला, जब आपका जन्म हुआ
धन्य हुआ सौभाग्य हमारा, हमसे आपका मिलन हुआ
हे मनीषी ! आप हैं माँ पार्वती की ऐसी अनूठी कृति
बाबूजी हरदासजी की ऐसी अलौकिक तपस्या
जो तपती रही, निखरती रही, अनवरत चलती रही
माँ बाबूजी ने हमको दिया ऐसा उपहार
जो न झुका, न मुड़ा, न रुका, निरंतर चलता ही रहा
आप हैं दीपक की ऐसी लौ
जो ले चली अपने साथ उल्लासों की असंख्य कलियाँ और अनगिनत हार
आप हैं ऐसी अनूठी अलौकिक खुली किताब,
जिसमें समाहित हैं अनगिनत प्रश्नों के उत्तर
आप हैं विलक्षण प्रतिभा के धनी दैदीप्यमान विद्वान
आपकी छवि तो मन के मैलों को धो देती है
आपके पास है ज्ञानज्योति का ऐसा पुंज,
जो उजयारे की छटा फैलाता रहता है
आपकी अनूठी शैली में हम तो उलझकर रह जाते हैं;
पर भारिल्लजी आपसे मिलकर सब भ्रम मिट जाते हैं
आप तो वे अवतार हैं जो अपने ज्ञान के पुंज से उजाला फैलाते रहते हैं
और हम उसमें डूबते उतराते रहते हैं
आपके साहित्य में छिपा है आपका श्रम और साधना
आपका न्याय, आपकी तार्किक विचारधारा और अध्ययन
भारिल्लजी ज्ञान के सागर में कितने गोते लगा चुके हैं आप
आपकी वाणी की ओजस्विता, धर्म का शास्त्रीय अध्ययन
हम भी ज्ञान के सागर में गोते लगाने लगते हैं
आपकी वाणी जब आपके श्री मुख से निकलती है,
हम सब तो बस सम्मोहित से हो जाते हैं
आपकी गंभीरता, आपकी शालीनता का वैभव सहमाता जाता है हमको;
पर आपका प्यार, आपका आशीर्वाद
बहुत याद आता है, बहुत याद आता है
गुणमाला के गुणों से आपको मिला ऐसा सहारा
आप ना भटके, न अटके गृहस्थी की उलझनों में
हे जैनदर्शन के शीर्षस्थ विद्वान ! जिनवाणी के प्रचारक
सफल शोधकर्त्ता, हिंसा से दूर, गुणों के गुणी
ऐसे निर्भीक व्यक्तित्व को हमारा नमन, हमारा नमन
शत् शत् वन्दन, शत् शत् वन्दन।

02 जनवरी 2010, मूल्य : 2/- आर. एन. आई. 31109/77 RJ / J. P. C / FN-61 / 2009-11

हार्दिक बधाई !

उदयपुर (राज.) : पण्डित टोडरमल महाविद्यालय के स्नातक एवं अ.भा.जैन युवा फैडरेशन के प्रदेश प्रभारी पण्डित जिनेन्द्रजी शास्त्री को मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर में **पण्डित रतनचंद भारिल्ल के साहित्य का दार्शनिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन** विषय पर शोधकार्य की अनुमति मिली है। इस अनुमति के लिये श्री जिनेन्द्र शास्त्री प्राकृत एवं जैनोलोजी विभाग द्वारा पीएच.डी. प्री-टेस्ट एवं इन्टरव्यू में उत्तीर्ण हुये हैं।

ज्ञातव्य है कि आपकी धर्म पत्नी श्रीमती सीमा जैन का **डॉ. हुकमचंद भारिल्ल के साहित्य का समालोचनात्मक अनुशीलन** विषय पर पीएच.डी. करने हेतु सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर में रजिस्ट्रेशन हो चुका है।

आप दोनों को जैन पथ प्रदर्शक परिवार की ओर से हार्दिक बधाई !

शोक समाचार

1. बीना-सागर (म.प्र.) निवासी डॉ. अमृतलालजी मोदी का 67 वर्ष की आयु में शांतपरिणामोंपूर्वक देहावसान हो गया। आपकी स्मृति में 750/- दान में एवं वीतराग विज्ञान की नवीन सदस्यता हेतु 250/- प्राप्त हुये हैं।

2. नागपुर (महा.) निवासी श्रीमती सीमा बानाईत धर्मपत्नि श्री शरदचंद्र बानाईत का 59 वर्ष की आयु में दिनांक 1 दिसम्बर को समताभावपूर्वक देहावसान हो गया। आप अत्यंत स्वाध्यायी महिला थीं एवं आत्माराधना करते हुये सादगीपूर्वक जीवन व्यतीत करती थीं। अपने परिवार को धार्मिक संस्कार देने में आपकी महत्वपूर्ण भूमिका रही। आपकी स्मृति में वीतराग-विज्ञान में 251/- एवं जैनपथप्रदर्शक में 251/- प्राप्त हुये हैं।

3. जलेसर-ऐटा (उ.प्र.) निवासी पण्डित विमलकुमारजी जैन की धर्मपत्नि श्रीमती कान्ता जैन का दिनांक 26 नवम्बर को 68 वर्ष की आयु में शांतपरिणामों से देहावसान हो गया। आप बहुत शांत स्वभावी एवं स्वाध्यायी महिला थीं तथा लगभग 20 वर्षों से जयपुर शिविर में आकर लाभ लेती थीं।

4. मौ-भिण्ड (म.प्र.) निवासी श्री मोहरमनलालजी जैन का दिनांक 23 दिसम्बर को शांतपरिणामोंपूर्वक देहावसान हो गया। आपकी स्मृति में जैनपथप्रदर्शक में 251/- प्राप्त हुये हैं।

दिवंगत आत्मायें शीघ्र ही चतुर्गति के दु:खों से छूटकर निर्वाण की प्राप्ति करें- यही हमारी मंगल भावना है।

ब्र. यशपालजी द्वारा तत्त्वप्रचार

ध्रुवधाम-बांसवाड़ा (राज.) : यहाँ दिनांक 7 से 14 दिसम्बर तक प्रतिदिन तीनों समय कर्म के दसकरण (कर्म की दस अवस्थायें) विषय पर कक्षायें चलीं। यहाँ विद्यार्थियों ने इसके संबंध में अनेक शंकाओं का समाधान प्राप्त किया। मुनि जीवन के संबंध में अनेक शंकाओं का समाधान किया गया। पुण्य-पाप, धर्म, शुद्धोपयोग-शुद्धपरिणति, ज्ञानधारा-कर्मधारा आदि अनेक विषयों पर भी प्रश्नोत्तरों के माध्यम से चर्चा हुयी।

तीर्थयात्रा सानन्द सम्पन्न

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित दक्षिण भारत के तीर्थों की यात्रा दिनांक 22 से 28 दिसम्बर तक सानन्द सम्पन्न हुई, इसके विस्तृत समाचार आगामी अंक में प्रकाशित किये जायेंगे।

डॉ. भारिल्ल के आगामी कार्यक्रम

9 व 10 जनवरी	चैतन्यधाम (अहमदाबाद)	महासमिति सम्मेलन
16 व 17 जनवरी	इन्दौर	विधान
18 व 19 जनवरी	खैरागढ	पूरे छत्तीसगढ की ओर से हीरक जयन्ती
20 जनवरी	रायपुर	प्रवचन एवं हीरक जयंती
15 से 17 फरवरी	चन्देरी (म.प्र.)	मंदिर शिलान्यास एवं हीरक जयंती
17 से 18 फरवरी	टीकमगढ	प्रवचन एवं हीरक जयंती
19 से 21 फरवरी	ललितपुर	प्रवचन एवं हीरक जयंती
08 से 11 मार्च	निसई (म.प्र.)	प्रवचन एवं हीरक जयन्ती
12 से 14 मार्च	सागर	प्रवचन एवं हीरक जयन्ती
15 व 16 मार्च	खड़ैरी (म.प्र.)	प्रवचन एवं हीरक जयन्ती
28 मार्च	उदयपुर	महावीर जयन्ती/हीरक जयन्ती
11 मई से 3 जून	देवलाली	गुरुदेव जयंती, प्रशिक्षण शिविर व हीरक जयन्ती समापन समारोह
4 जून से 25 जुलाई	विदेश	धर्म प्रचारार्थ
1 से 10 अगस्त	जयपुर	महाविद्यालय शिक्षण शिविर

प्रकाशन तिथि : 28 दिसम्बर 2009

प्रति,

सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड.
प्रबन्ध सम्पादक : **पण्डित संजीवकुमार गोधा**, डबल एम.ए.(जैनविद्या व तुलनात्मक धर्मदर्शन; इतिहास), नेट, एम.फिल (जैन दर्शन)
प्रकाशक एवं मुद्रक : **ब्र. यशपाल जैन** द्वारा जैनपथप्रदर्शक समिति के लिए जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., जयपुर से मुद्रित तथा त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स, श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर से प्रकाशित।

यदि न पहुँचे तो निम्न पते पर भेजें -
ए- 4 बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
फोन : (0141) 2705581, 2707458
E-Mail : ptstjaipur@yahoo.com **फैक्स :** (0141) 2704127